



जनहित वाद—एक समग्र अध्ययन

देव कुमार ओझा, विधि विभाग
वी.एस.एस.डी. कालेज, कानपुर, उत्तरप्रदेश, भारत

ORIGINAL ARTICLE



Author

देव कुमार ओझा

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 22/03/2024
Revised on : -----
Accepted on : 24/05/2024
Overall Similarity : 00% on 15/05/2024



Plagiarism Checker X - Report
Originality Assessment

Overall Similarity: **0%**

Date: May 15, 2024

Statistics: 0 words Plagiarized / 3125 Total words

Remarks: No similarity found, your document looks healthy.

शोध सार

किसी भी देश का संविधान वहाँ की सर्वोच्च विधि होती है। भारत का संविधान भारत की सर्वोच्च विधि है जिसमें सरकार के तीनों अंगों विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका की शक्तियों का स्पष्ट रूप से उपबन्धित किया गया है। संविधान में ऐसा कोई उपबन्ध परिलक्षित प्रावधान नहीं होता है जिसके अन्तर्गत मूल अधिकारों के प्रवर्तन की विशेष प्रक्रिया निहित हो। यद्यपि संविधान निर्माता जानते थे कि भारत जैसे नव स्वतंत्र देश में निर्धनता, अज्ञानता, अशिक्षा, शोषण, अभाव हो वहाँ मूल अधिकारों के प्रवर्तन में किसी तकनीकी सूत्र या कार्यवाहियों पर जोर देना उपचारों की विफलता ही होगी और देश की स्वतंत्रता व लोकतंत्र का कोई अर्थ ही नहीं रह जायेगा। न्यायाधिपति श्री कृष्ण अय्यर ने कहा कि 'वाद-कारण' और 'पीड़ित व्यक्ति' की संकुचित धारणा का स्थान 'वर्ग कार्यवाही', 'लोकहित में कार्यवाही', 'प्रतिनिधिवाद' लाने की विस्तृत धारणा ले रही है। जनहित वादी का यह मुख्य उद्देश्य है कि वह श्रमिकों, पीड़ित महिलाओं, बच्चों, कैंदियों, अनाथों के साथ हो रहे अमानवीय व्यवहारों को रोकने के लिये सम्बन्धित प्राधिकारियों को समुचित निर्देश दे, ताकि विभिन्न विधियों को भली-भाँति लागू किया जा सके और इनके शोषण को रोका जा सके। भारत में अमेरिकी तथा ब्रिटिश न्यायिक सक्रियता का अटूट प्रभाव रहा था। लोकहित वाद की उत्पत्ति पश्चिमी न्यायिक सक्रियता का ही परिणाम है। भारत के उच्चतम न्यायालय ने इसमें महती भूमिका निभाई है। जीवन के ऐसे अनेक क्षेत्रों जैसे-वैयक्तिक स्वतंत्रता, जीवन का अधिकार, स्वास्थ्य, सुरक्षा सम्बन्धी जोखिम, जनजातियों का कल्याण, बालकों, श्रमिकों, महिलाओं, बंधुआ मजदूरों, शिक्षा तथा राजनीतिक सत्ता एवं प्रसार माध्यमों के दुरुपयोग इत्यादि, में न्यायिक उपचार प्राप्त करना सम्भव नहीं था, लोकहित वाद के माध्यम से अब उपचार सरल एवं सुगम हो गया है।

मुख्य शब्द

संविधान, मूल अधिकार, न्यायिक सक्रियता, लोकहित वाद, उच्चतम न्यायालय.

परिचय

न्याय को मानव उद्भव के साथ ही समाज का आवश्यक अंग माना गया है। न्याय का सिद्धान्त अन्याय, शोषण, दमन, हिंसा, शोषण, दमन, भेदभाव, जातिवाद एवं अस्पृश्यता रहित समाज का निर्माण करता है। मानव सभ्यता एवं न्याय की अवधारणा का विकास सहगामी हैं। न्याय का सम्बन्ध राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक न्याय, प्रशासनिक निर्णय और वैधानिक प्रक्रिया से है। न्याय न तो विशुद्धतः नैतिकता है और न ही अपरिहार्य रूप से विधि का भाग है। यह दोनों का संगामी स्वरूप है। न्याय वह तत्व है जो सामंजस्य, सामाजिक व्यवस्था एवं मानवीय गरिमा की समाज में स्थापना करता है।

किसी भी देश का संविधान वहाँ की सर्वोच्च विधि होती है। भारत का संविधान भारत की सर्वोच्च विधि है जिसमें सरकार के तीनों अंगों विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका की शक्तियों का स्पष्ट रूप से उपबन्धित किया गया है। संसदीय शासन प्रणाली में कार्यपालिका एवं विधायिका का अभिन्न सम्बन्ध होता है एवं कार्यपालिका विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है। यहाँ यह स्पष्ट करना भी सम्बन्धित होगा कि भारतीय संविधान में न तो ब्रिटेन के समान संसद की सर्वोच्चता को अपनाया है और न ही अमेरिका की न्यायपालिका की सर्वोच्चता को। भारतीय संविधान में अद्भुत ढंग से अमेरिका की न्यायपालिका की तरह न्यायपालिका की सर्वोच्चता के सिद्धान्त एवं इंग्लैण्ड के संसदीय प्रभुसत्ता के बीच के मार्ग को अपनाया गया है। संविधान निर्माताओं ने न्यायपालिका को विशिष्ट स्थान दिया है। न्यायपालिका का कार्य न केवल संविधान और उसके उद्देश्यों की रक्षा करना है, बल्कि नागरिकों के मूल अधिकारों का भी सजग प्रहरी है। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् से ही न्यायपालिका ने संविधान के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए संविधान के भाग-3 एवं संविधान के भाग-4 में क्रमशः मूलभूत अधिकारों द्वारा व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतंत्रता एवं दूसरी तरफ समाजवादी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय द्वारा कल्याणकारी राज्य की अपेक्षा के बीच सामंजस्य का कार्य किया है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना उचित होगा कि भारत में संविधान सर्वोच्च है, संसद नहीं। संविधान के उपबन्धों के निर्वहन का कार्य न्यायपालिका का है अतः संसद द्वारा बनाया गया कानून संविधान के मूल ढाँचे के विरुद्ध है या नहीं। यह देखने का कार्य सर्वोच्च न्यायपालिका का ही है। संसद द्वारा पारित कोई भी कानून संविधान के असंगत होने पर न्यायपालिका द्वारा असंवैधानिक करार दिया जा सकेगा। स्पष्टतः यदि कोई संस्था संविधान द्वारा निर्धारित सीमाओं का अतिक्रमण करती है तो हमारी सर्वोच्च न्यायपालिका के पास ऐसे कार्यों की जाँच करने का अधिकार है और यही अधिकार न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति कहलाती है। अतः न्यायविद् एम. सी. सितलवाड़ के अनुसार 'सभी प्रश्नों पर संविधान के अंतिम व्याख्याता के रूप में सर्वोच्च न्यायालय के प्रभाव पर बल देना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।' उच्चतम न्यायालय में निहित न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति संविधान का आधारभूत ढाँचा है, इसे संवैधानिक संशोधन द्वारा भी समाप्त नहीं किया जा सकता।

संविधान में ऐसा कोई उपबन्ध परिलक्षित प्रावधान नहीं होता है जिसके अन्तर्गत मूल अधिकारों के प्रवर्तन की विशेष प्रक्रिया विहित हो। यद्यपि संविधान निर्माता जानते थे कि भारत जैसे नव स्वतंत्र देश में निर्धनता, अज्ञानता, अशिक्षा, शोषण, अभाव हो वहाँ मूल अधिकारों के प्रवर्तन में किसी तकनीकी सूत्र या कार्यवाहियों पर जोर देना उपचारों की विफलता ही होगी और देश की स्वतंत्रता व लोकतंत्र का कोई अर्थ ही नहीं रह जायेगा।

जनहित वादों की संकल्पना का उद्भव न्यायिक सक्रियता का परिणाम रहा है। वर्तमान पारम्परिक न्याय प्रणाली को सामाजिक परिस्थितियों में ढालने की दशा में सही कदम है।

एक व्यक्ति जिसके मूल अधिकार का अतिलंघन हुआ है, वह अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय को आवेदन कर सकता है। 'चिरंजीत लाल बनाम भारत संघ' में 'उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि सामान्य

रूप से अनुच्छेद 32 के तहत जिस अधिकार को प्रवर्तित करवाया जा सकता है। सामान्यतः याचिकाकर्ता का स्वयं का, या व्यक्तिगत अधिकार होना चाहिए। इस सामान्य नियम के कुछ अपवाद हैं, जैसे बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका वादी या अन्य व्यक्ति द्वारा दाखिल किया जा सकता है।

जनहित वाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वर्तमान आर्थिक और सामाजिक समस्याओं से जूझते हुये भारतीय न्याय प्रणाली में सन् 1975 के लगभग आशा की किरण दिखाई दी। जब उच्चतम न्यायालय के कुछ सक्रिय और क्रियाशील न्यायाधीशों ने परम्परागत सुनवाई के अधिकार सम्बन्धी नियम को उदार बनाते हुये जन साधारण को लोकहित के मामलों द्वारा न्याय दिलाना प्रारम्भ किया। भारतीय न्यायपालिका के इस प्रयास से प्रोत्साहित होकर कुछ जनसेवी व्यक्तियों तथा संस्थाओं ने भी प्रशासकीय अधिकारियों के कर्तव्य के पालन न करने अथवा उपेक्षा बरतने के विरुद्ध न्यायालयों में जनहित की याचिका दायर कर जन साधारण को न्याय दिलाने का सिलसिला प्रारम्भ किया। इस प्रकार न्यायिक क्रियाशीलता के परिणामस्वरूप समाज के दलित, उपेक्षित और साधनहीन लोगों को उचित न्याय प्राप्त होना प्रारम्भ हुआ। आज लोकहित मामलों की पद्धति समस्त भारत में पूर्णतः स्थापित हो चुकी हैं।

जनहित मामले के आन्दोलन के प्रारंभ का श्रेय वास्तविक रूप से अमेरिका को है, जहाँ वर्तमान सदी के छठवें दशक में लोगों के अप्रतिनिधित्व हितों के लिये लोकहित विधि का शुभारंभ हुआ। भारत में जनहित मामलों को विकसित करने का वास्तविक श्रेय जनसेवी व्यक्तियों या संस्थाओं का न होकर न्यायाधीशों की न्यायिक सक्रियता को दिया जाना चाहिये। उच्चतम न्यायालय समाचार पत्रों में प्रकाशित या पत्रों द्वारा डाक से भेजी गई शिकायतों को ही याचिका मान कर उन पर सुनवाई के बाद निर्णय दिये गये। यही से सुनवाई के अधिकार के नियम से हटकर एक नवीन न्यायिक तकनीक का सूत्रपात हुआ, जिसे लोकहित मामलों का श्रीगणेश माना जाना चाहिये। अमेरिका की तरह इन मामलों का नीति विषयक होना आवश्यक नहीं था। जनसेवा की भावना रखने वाले व्यक्ति या सामाजिक हित के लिये सक्रिय संगठन भी सार्वजनिक व्यवस्था से संबंधित किसी मामले में वर्ग-विशेष की ओर से लोकहित मामला पेश कर सकते हैं।

जनहित कार्यवाही को सार्थक बनाने के लिये न्यायमूर्ति बी. आर. कृष्णा अय्यर ने इस बात पर बल दिया था कि लोकहित मामला संस्थित करने के लिये न्यायाधिकार होना अपरिहार्य नहीं माना जाना चाहिये तथा इस सम्बन्ध में 'लोकस स्टेंडी' नियम का उदारतापूर्वक निर्वचन किया जाना चाहिये ताकि गरीब, निर्धन, असहाय तथा साधनहीन व्यक्तियों को राहत पहुंचाई जा सके और उन्हें न्यायालय तक पहुंचने का समुचित अवसर मिल सके। यह स्पष्ट है कि लोकहित न्याय के विकास में श्रवणाधिकार का नियम ही सबसे बड़ी अड़चन थी, जो दूर हुई।

लोकहित के मामलों के लिए एक अलग प्रकोष्ठ की स्थापना की गयी है, जो भारत में जनहित पद्धति के स्थायीकरण की ओर इंगित करती है। जनहित मामलों की पद्धति को विकसित करने में 'इपिस्टोलरी अधिकारिता' (न्यायालय को पत्र लिखकर सुनवाई के लिए प्रेरित करना) का भी पर्याप्त महत्व है।

न्यायालय किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा उसे भेजे गये सामान्य पत्र को भी याचिका के समान मानकर उस पर सुनवाई कर सकता है, बशर्ते कि प्रकरण जनहित से सम्बन्धित हो। कोई भी नागरिक जनहित सम्बन्धी किसी मामले में अधिवक्ता की सहायता लिए बिना संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय में अथवा अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत किसी उच्च न्यायालय के नाम पत्र भेजकर न्यायिक कार्यवाही की जाने की प्रार्थना कर सकता है।

इस तरह साधन विहीन जनमानस हेतु मूलभूत मानवीय अधिकारों सम्बन्धी नवीनतम न्यायिक उपचार सुलभता से प्राप्त हो सकते हैं। न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती ने सामाजिक न्याय प्रस्थापित करने के उद्देश्य से कारगारों, अपचारियों तथा अपराधियों के पुनर्वास से सम्बन्धित निर्देश तथा मार्गदर्शिकाओं द्वारा उन्हें समुचित न्याय दिलाने की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया है।

भारत में जनहित मामलों का विकास

भारत में जनहित मामलों का प्रादुर्भाव अमेरिका से पूर्णतः भिन्न परिस्थितियों में हुआ है। सामाजिक हित में विशेष रुचि रखने वाले उच्चतम न्यायालय के कुछ न्यायाधीशों ने इस दिशा में अग्रणीय भूमिका निभाते हुए दलित, शोषित तथा पीड़ित व्यक्तियों को उनके मानव अधिकार दिलाने की पहल की। इस क्षेत्र में उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश माननीय भगवती तथा कृष्णा अय्यर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अपने सृजनात्मक बहुमूल्य निर्णयों द्वारा गरीबों तथा समाज के उपेक्षित वर्गों के प्रति सहानुभूति दर्शाते हुये उन्हें उनके हित अथवा अधिकार दिलाने की भरसक चेष्टा की। अपने अद्वितीय निर्णयों के माध्यम से इन विद्वान न्यायाधीशों ने विधि के प्रवर्तन से सम्बन्धित सरकारी विभागों या सार्वजनिक निकायों की दलितों के प्रति लापरवाही तथा कर्तव्यहीनता को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत किया तथा उपेक्षितों को उनके विधिक अधिकार दिलाने में गहरी रुचि दिखाया है। भारत में जनहित मामलों का विकास निम्नलिखित चरणों में हुआ है:

1. श्रवणाधिकार के सिद्धान्त के क्रमिक विकास द्वारा;
2. साधारण पत्र को याचिका के समान मानने की न्यायालयी अधिकारिता के प्रादुर्भाव द्वारा;
3. न्यायिक उपचारों को अधिक लोकतांत्रिक बनाकर;
4. सामाजिक न्याय की परिमार्जित संवैधानिक धारणा के माध्यम से।

जन साधारण को न्याय दिलाने में सबसे बड़ी बाधा यह थी कि याचिका ग्राह्य होने के लिये उसमें अर्जीदार का समुचित हित होना आवश्यक था जिसे 'लोकस स्टेंडी का सिद्धान्त' कहा गया है। दूसरे शब्दों में, केवल वही व्यक्ति प्रशासी निकास के किसी कार्य को चुनौती दे सकता था, जो उससे वास्तविक रूप से पीड़ित था। चूंकि राज्य को जनहित का एक मात्र संरक्षक माना जाता था, अतः कोई निजी व्यक्ति जनसाधारण की ओर से राज्य या शासन के विरुद्ध मामला नहीं ला सकता था, जब तक कि वह स्वयं उससे व्यथित न हुआ हो, अतः व्यक्ति-विशेष का राज्य शासन के कार्यों या सत्ता के दुरुपयोग या लापरवाही के विरुद्ध न्यायालय में वाद संस्थित करके उस पर नियंत्रण रखने का अधिकार नहीं था।

वर्तमान में बदलते हुये सामाजिक परिवेश के कारण न्यायालयों में 'सुनवाई का अधिकार' के प्रति संकुचित नीति को त्याग कर उदारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुये किसी व्यक्ति के अवैध बंदीकरण के विरुद्ध उसके रिश्तेदार निकट सम्बन्धी या मित्र के बंदी-प्रत्यक्षीकरण की याचिका प्रस्तुत करने के अधिकार को स्वीकार किया।

न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती के अनुसार यह संविधानवाद की प्रक्रिया का ही विकास है। यह न्यायपालिका को परम्परागत दबावों एवं कार्यपालिका की अडचनों से मुक्त करता है, और भारतीय संविधान में निहित सामाजिक मूल्यों और कल्याणकारी राज्य के स्वप्नों को पूरा करने का प्रयास करता है।

पारम्परिक मत यह था, कि अनुच्छेद 32 के अधीन अनुतोष पाने का हक उसी व्यक्ति को है जिसके मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता है, किन्तु अपने आधुनिकतम निर्णयों में उच्चतम न्यायालय ने आंग्ल विधि के उक्त नियम में परिवर्तन कर दिया है, और अनुच्छेद 32 के क्षेत्र को बहुत विस्तारित कर दिया है।

न्यायाधिपति श्री कृष्ण अय्यर ने कहा कि 'वाद-कारण' और 'पीड़ित व्यक्ति' की संकुचित धारणा का स्थान 'वर्ग कार्यवाही', 'लोकहित में कार्यवाही', 'प्रतिनिधिवाद' लाने की विस्तृत धारणा ले रही है।

जनहित वादी का यह मुख्य उद्देश्य है कि वह श्रमिकों, पीड़ित महिलाओं, बच्चों, कैदियों, अनाथों के साथ हो रहे अमानवीय व्यवहारों को रोकने के लिये सम्बन्धित प्राधिकारियों को समुचित निर्देश दे, ताकि विभिन्न विधियों को भली-भाँति लागू किया जा सके और इनके शोषण को रोका जा सके।

मुख्य न्यायमूर्ति श्री भगवती ने लोकहितवाद के प्रयोग के लिए निम्नलिखित नियमों को प्रतिपादित किया है:

1. कोई भी निर्धन व्यक्ति किसी भी न्यायाधीश को पत्र लिख सकता है। ऐसा व्यक्ति केवल उस न्यायाधिपति का

ही नाम जान सकता है जो उसके प्रान्त से आया हो। पत्र के साथ शपथ पत्र होना भी आवश्यक नहीं है। न्यायाधिपति श्री पाठक ने कहा था कि उसे न्यायालय के नाम पत्र लिखना चाहिए, किसी न्यायाधीश के नाम नहीं।

2. अनुच्छेद 32 के अधीन न्यायालय को उचित मामलों में जहाँ निर्धन व्यक्ति के मूल अधिकारों का उल्लंघन होता हो, प्रतिकर प्रदान करने की भी शक्ति है। अनु. 32 सिविल न्यायालय द्वारा प्रतिकर प्राप्त करने का स्थानापन्न नहीं हो सकता है। इसका प्रयोग केवल उन मामलों में किया जायेगा, जहाँ किसी निर्धन व्यक्ति के मूल अधिकार का भयंकर एवं स्पष्ट उल्लंघन किया जाता है और वे अपनी निर्धनता के कारण सिविल न्यायालय से उपचार पाने में असमर्थ है। इसी आधार पर न्यायालय ने रुदल शाह और भीमसिंह के मामलों में पीटिशनर को प्रदान किया है।
3. अनुच्छेद 32 के अधीन न्यायालय निर्धन और सामाजिक एवं आर्थिक रूप से उपेक्षित लोगों के मूल अधिकारों के अतिक्रमण का पता लगाने के लिए आयोग नियुक्त कर सकता है, जैसा कि बन्धुआ मुक्ति मोर्चा में किया था या कोई अन्य आदेश या रिट जारी कर सकता है, जो उनके मूल अधिकारों को सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक है। मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए न्यायालय की शक्ति असीमित है। यही उसका संवैधानिक कर्तव्य है।

उच्चतम न्यायालय का निर्णय जो देश के निर्धन और कमजोर वर्ग के लोगों के अधिकारों को सजग प्रहरी के रूप में प्रतिष्ठित करता है और उस पुरानी संकीर्ण विचारधारा को छोड़ देता है जिसके अनुसार केवल वहीं व्यक्ति न्यायालय में आवेदन कर सकता है जिसके स्वयं के मूल अधिकारों का राज्य द्वारा अतिक्रमण हुआ हो। जब जनहित के मामले में समाज का कोई भी व्यक्ति या संस्था न्यायालय में आवेदन दे सकता है, न्यायालय का दरवाजा केवल उद्योगपतियों, ठेकेदारों, तस्करों, शराब सम्राटों और धनी लोगों के लिए ही नहीं वरन् देश की करोड़ों शोषित गरीब जनता के लिए भी खुला है। इस निर्णय द्वारा न्यायालय ने न्याय को जनता के दरवाजे तक पहुंचा दिया है, जिसका आह्वान हमारे संविधान के अनुच्छेद 39(क) में किया गया है। वस्तुतः लोकतांत्रिक प्रणाली में निर्धन और शोषित वर्गों की अपनी न्यायालय से यह अपेक्षा भी है कि उन्हें न्याय मिलेगा। न्यायालय ने जनता की इस आकांक्षा को स्वीकार कर उन्हें लाभ पहुंचाया भले ही उसमें कुछ विलम्ब हुआ हो। यह लोकतांत्रिक परम्परा को ठोस और सुदृढ़ बनाने की दिशा में शुभ कदम है।

भारतीय संविधान इन सभी तीनों समाजों को समाहित करता है। संविधान की पाँचवी अनुसूची प्राचीन समाजों का विशेष ख्याल रखती है। समानता के सिद्धान्त अन्य अधिकारों जो कि भाग-3 में निहित है, के साथ मूलभूत अधिकारों में सम्मिलित हैं। भारतीय संविधान के भाग-4 में निहित है तथा राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों में उपबन्धित है और राज्य के लिए निर्देश है कि वह प्रत्येक समाज को उसकी यथास्थिति से आगे की ओर ले जाये, ताकि नई सामाजिक व्यवस्था का निर्माण हो सके।

भारतीय संसद ने आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था को रूपान्तरित करने और राज्य कार्य के द्वारा सामाजिक, आर्थिक न्याय स्थापित करने का निश्चय किया है। सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय की प्रोन्नति के लिये संविधान में विभिन्न संशोधन किये हैं। कृषि भूमि सुधार, सामरिक महत्व की आर्थिक संस्थाओं का राष्ट्रीयकरण जैसे बैंक, बीमा, कोयला, बिजली, परिवहन एवं संचार और औद्योगिक क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार तथा श्रमिक कल्याण के विभिन्न विधानों का निर्माण सामान्य व्यक्ति के आर्थिक अधिकारों की पुष्टि करते हैं। मानव अधिकारों के सामाजिक, आर्थिक दृष्टिकोण से संविधान का मुख्य उद्देश्य अनुच्छेद 38, 39 में निहित है। मानव अधिकारों की सामाजिक-आर्थिक श्रेणी के सम्बन्ध में संविधान का दृष्टिकोण निर्देशात्मक है, जबकि राजनीतिक एवं नागरिक अधिकारों को मूलभूत अधिकार बनाया गया है और न्यायालय द्वारा लागू किये जाने योग्य है, जो कि युक्ति-युक्त निर्बन्धनों के साथ सामाजिक भलाई लिये हैं। आर्थिक एवं सामाजिक अधिकार भी मूलभूत है, किन्तु उन्हें न्यायालय द्वारा लागू नहीं कराया जा सकता है।

उच्चतम न्यायालय ने भी यह निर्धारित किया है कि दोनों भागों में समरसता हो और इस सन्दर्भ में संसद ने समुदाय के सामाजिक, आर्थिक अधिकारों से सम्बन्धित भाग-4 को प्राथमिकता प्रदान की है तथा जिसका प्रमुख परिणाम यह है कि सामाजिक, आर्थिक अधिकारों के संरक्षण एवं उन्नयन के लिए विधान की संवैधानिक उन्मुक्तता प्रदान की है, चाहे इससे मूलभूत अधिकारों (राजनीतिक और नागरिक अधिकार) का हनन होता है। 42वां संविधान संशोधन भारतीय गणतंत्र को समाजवाद गणतन्त्र के रूप में विशेषतः घोषित करता है। अनुच्छेद 43(1), जोकि उद्योगों में संलग्न संगठनों, प्रतिष्ठानों, उपक्रमों के प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए उचित वैधानिक कदम उठाने का निर्देश देता है, भी 42वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया है। 44वें संशोधन द्वारा संसद ने सम्पत्ति के अधिकार को मूलभूत अधिकारों की श्रेणी में से हटा दिया है और इस प्रकार सम्पत्ति का अधिकार भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में अछूता अधिकार नहीं है। अतः संविधान में दिये गये प्रावधानों पर विस्तृत दृष्टिकोण डाले तो यह प्रदर्शित होता है कि समाज के कमजोर वर्गों, श्रमिकों, महिलाओं, बच्चों और असहाय व्यक्तियों के संरक्षण के लिये बहुत सारे विधान हैं।

न्यायिक सक्रियता के मार्गदर्शक सिद्धान्त के रूप में अमेरिकी तथा ब्रिटिश न्यायिक व्यवहार द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त ही अग्रणी रहे हैं। अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के चौदहवें संशोधन की विशद व्याख्या की और स्वतंत्रता एवं समानता का साम्राज्य स्थापित किया, मानव मूल्यों को विशेष संरक्षण प्रदान कर 'श्वेत प्राथमिकता' एवं 'अलग किन्तु समान' जैसे मानवता विरोधी सिद्धान्तों को असंवैधानिक घोषित किया है। 'विधि की सम्यक प्रक्रिया' तथा 'विधि का समान संरक्षण' खण्ड वाक्य के आधार पर भेदभावकारी कानूनों को लागू करने से इंकार कर समानता के मानदण्ड स्थापित किये हैं तथा सामाजिक कार्यवाही बाद की त्वरित प्रक्रिया के द्वारा सभी प्रकार के सामाजिक हितों की अभिवृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान किया है। वहीं ब्रिटेन में 'विधि शासन' सिद्धान्त न्यायिक व्यवहार का प्रेरणा स्रोत रहा है।

निष्कर्ष

भारत में अमेरिकी तथा ब्रिटिश न्यायिक सक्रियता का अटूट प्रभाव रहा था। लोकहित वाद की उत्पत्ति पश्चिमी न्यायिक सक्रियता का ही परिणाम है। भारत के उच्चतम न्यायालय ने इसमें महती भूमिका निभाई है। जीवन के ऐसे अनेक क्षेत्रों जैसे-वैयक्तिक स्वतंत्रता, जीवन का अधिकार, स्वास्थ्य, सुरक्षा सम्बन्धी जोखिम, जनजातियों का कल्याण, बालकों, श्रमिकों, महिलाओं, बंधुआ मजदूरों, शिक्षा तथा राजनीतिक सत्ता एवं प्रसार माध्यमों के दुरुपयोग इत्यादि, में न्यायिक उपचार प्राप्त करना सम्भव नहीं था, लोकहित वाद के माध्यम से अब उपचार सरल एवं सुगम हो गया है। इस प्रकार भारत, अमेरिका तथा ब्रिटेन के वरिष्ठ न्यायालयों ने वितरणात्मक न्याय में उल्लेखनीय योगदान किया है, किन्तु भारत में हाल ही में आरक्षण विरोधी तथा उदारीकरण एवं निजीकरण की नीति के समर्थन में दिये गये निर्णय सामाजिक न्याय की संकल्पना के विपरीत दिखायी प्रतीत होते हैं।

संदर्भ सूची

1. भारत का संविधान, 1950।
2. पाण्डेय, जे. एन. (2023) *भारत का संविधान*, 60वाँ संस्करण 2023 सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, प्रयागराज, उत्तरप्रदेश।
3. बाबेल, बसन्ती लाल (2021) *भारत का संविधान*, 17वाँ संस्करण, सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, प्रयागराज, उत्तरप्रदेश।
4. प्रसाद, विष्णु (1989) *इंग्लैण्ड की संवैधानिक विधि के सिद्धान्त*, द्वितीय संस्करण, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना।
